RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-3 • अंक-11 • त्रैमासिक • जुलाई-सितम्बर, 2015

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	"व्यापार एवं पारिवारिक मूल्यों की सुनिश्चित सफलता में जैनविद्या की भूमिका'	प्रो. जिनेन्द्र कुमार जैन	06-12
02.	गांधी-सम्मत अहिंसा एवं समसामयिक उपादेयता	डॉ. सविता गुप्ता	13-15
03.	सौमनस्य व समन्वय का प्रतीक : जैन धर्म	डॉ. देव कोठारी	16-18
04.	भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की संकल्पना एवं विकास	डॉ. सरोज राय	19-22
05.	भगवान महावीर का आत्मा विषयक चिन्तन (आचारांग के सन्दर्भ में)	ज्योति गिरिया	23-28
06.	राष्ट्रीय सुरक्षा का विकास और अध्यापक	प्रो. (डॉ.) मनीषा वर्मा	29-31
07.	जैन धर्म व गांधी की अहिंसा : समानताएं	डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़	32-35
08.	भारतीय ऋषि परम्परा में "श्रृंगी ऋषि"	डा. मधुलिका शर्मा	36-38
09.	किरातार्जुनीयम् में प्राचीन भारतीय राजतन्त्र	कृष्ण चन्द्र पण्डा	39-42
10.	Dynamics of Interpersonal Relationships in Knowledge Management	Shikha Dadhich, Kapil Dev	43-50
11.	Remedy for Depression , Stress and Anxiety	Dr. Nidhi Shrivastava	51-58

Scanned by CamScanner

जैन धर्म व गांधी की अहिंसा : समानताएं

डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़

आज के वैज्ञानिक युग में मानव जीवन का बाह्य पक्ष जितना ही विस्तृत होता जा रहा है, आन्तरिक पक्ष उतना ही संकीर्ण होता जा रहा है। इसलिए मानव ने अपनी वैज्ञानिक खोजों के सदुपयोग की जगह उनके दुरुपयोग को पंसद करने लगा है। उसकी मानवी प्रवृत्ति क्षीण हो रही है। वह भूल गया कि एक सुखद एवं शांतिमय जीवन के लिए घृणा नहीं प्रेम की, द्वेष नहीं दोस्ती की, दुर्भाव नहीं सम्भाव की तथा हिंसा नहीं अहिंसा की आवश्यकता होती है। हिंसा विनाश लाती है और अहिंसा विकास प्रदान करती है। वर्तमान भयाक्रान्त मानव जीवन को भयमुक्त बनाने के लिए अहिंसक मार्ग को अपनाने के सिवा अन्य कोई उपचार नहीं है।

अहिंसा-सिद्धान्त का सबसे प्रबल प्रतिपादक जैन धर्म-दर्शन है। तथा जैन धर्म के बाद यदि किसी व्यक्ति का नाम आता है तो वह महात्मा गांधी। जैन धर्म के अहिंसक सिद्धांतों से महात्मा गांधी भी बहुत प्रभावित हुये और उन सिद्धान्तों को अपने जीवन व व्यवहार में अपनाया।

गांधीवाद आधुनिक युग में प्रमुखवादों में से एक है। मात्र इसके नामोच्चारण से ही अधिकतर लोगों के सामने इसके जन्मदाता युगपुरुष महात्मा गांधी की एक झलक सी आ जाती है। गांधी युग में भारतीय संस्कृति के सभी सिद्धान्तों का समन्वय हुआ है, इस समन्वयकरण में अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जो अन्तःस्रोत का काम करती है। यद्यपि अहिंसा की धारा अति प्राचीनकाल से भारत वर्ष में प्रवाहित हो रही है, महात्मा गांधी को अहिंसा की ओर आकर्षित करने में लिये टॉल्सटाय की पुस्तक **"कग्डम ऑफ हैवेन इज विदीन यू"** को भी माना गया है।[1]

रामचन्द्र भाई जैन तथा रस्किन का भी गांधीजी के जीवन पर काफी प्रभाव था।[2] महात्मा गांधी ने कहा- 'मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं हैं और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्त्तव्य नहीं है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' और 'अहिंसा परमो धर्म'। मैंने जो कुछ

Scanned by CamScanner

लिखा है वह मैंने जो कुछ किया है वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका है।[3] अहिंसा को परिभाषित करते हुए महात्मा गांधी ने कहा है

अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आना पालन असंभव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिए।[4]

'अहिंसा ही सतीश्वर का दर्शन करने का सीधा छोटा सा मार्ग दिखाई देता है।'

'अहिंसा पूर्ण निर्दोषिता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ प्राणी मात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव।'

'अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।'

'अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः परन्तु अनजाने में जा रही है'

''अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरु से भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है। उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतन है। यह आत्मा का विशेष गुण है।[5]

गांधीजी ने भी माना है कि हिंसा केवल शरीर से ही नहीं बल्कि वचन और मन से भी होती हैं उनमें से किसी को हानि पहुंचाना हिंसा है। गांधीजी यहीं नहीं रूकते, किसी के प्रति हानि पहुंचाने वाली बात सोचना हिंसा में ही सम्मिलित है। मन, वचन तथा काय से हिंसा करने का मतलब होता है कि हिंसा के दो रूप हैं- भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा। इसी आधार पर अहिंसा के दो रूप है- भाव अहिंसा और द्रव्य अहिंसा। गांधी के अनुसार अहम् पर आधारित जितनी भी मानसिक क्रियाएं हैं, वे सभी हिंसा ही है। जैसे- स्वार्थ, प्रभुता की भावना, जातिगत विद्वेष, असंयमित भोग तृप्ति, अपने व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थों का अंध साधन, शस्त्र और शक्ति के आधार पर अपनी कामनाओं की संतृप्ति करना आदि। इसके विपरीत अहिंसा अहम् भावना के विनाश में निहित है। अहिंसा केवल जीव दया ही नहीं है बल्कि स्वार्थ का त्याग, जनकल्याण के कार्य, असंयमित भोगवृत्ति का त्याग आदि अहिंसा के ही रूप हैं।[6]

अहिंसा के पूर्ण पालन की अवस्था में अवश्य ही जीवन की स्थिति असंभव हो जाती है। अतएव हम सब मर जाएं तो परवाह नहीं, सत्य को कायम रहने देना चाहिए। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस सिद्धान्त को आखिरी मर्यादा तक पहुंचाया है और यह कह दिया है कि भौतिक जीवन एक दोष है, एक जंजाल है। मोक्ष देहादि के परे ऐसी अदेह-सूक्ष्म अवस्था है जहां न खाना है, न पानी है। इसलिए जहां न दूध दुहने की आवश्यकता है और न घास - पात को तोड़ने की। गांधीजी ने हिंसा के बाह्य कारण बताये हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण, परमार्थ के लिए हिंसा, उसी प्राणी की सुखशांति के लिए हिंसा करना जिसकी हिंसा की जाती है। पहले दोनों में हिंसा का कुछ अंश है लेकिन तीसरी बिल्कुल अहिंसक है।

गांधीजी के अनुसार अहिंसा की विशेषता यह है कि यह क्षत्रिय का गुण है कायर व्यक्ति द्वारा अहिंसा का पालन संभव नहीं है। अहिंसा है जागृत आत्मा का गुण विशेष। अहिंसा न रूढ़िवाद है, न उपयोगितावाद। अहिंसा और दया में उतना ही अन्तर है जितना कि सोने और सोने से बने हुए गहने में। दया के बिना अहिंसा हो ही नहीं सकती। जहां तक अहिंसा और सत्य के संबंध की बात है, गांधी ने कहा है कि सत्य सबसे बड़ा धर्म है और अहिंसा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है तथा इस कर्त्तव्य को बार-बार करके ही कोई सत्य की पूजा कर सकता है यानी सत्य एक साध्य है और अहिंसा एक साधन है।[7]

उनका मानना था कि बिना अहिंसा के पालन के ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव नहीं हैं। अहिंसा और यज्ञ चाहे अहिंसा और खेती की बात है वहां हिंसा तो हिंसा ही है। अहिंसा का आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप हम समाज में व्यापार, सामाजिक रूढ़िता व राजनैतिक व्यवस्था में देख सकते हैं। गांधीजी का मानना था कि जब तक इन

Scanned by CamScanner

व्यवस्थाओं में सुधार नहीं होगा तब तक व्यक्ति अहिंसक नहीं बन सकता।

जैन धर्म एवं दर्शन में अहिंसा का प्रमुख स्थान है। जैन धर्म दर्शन अनीश्वरवादी अध्यात्मवादी से है, जो प्राणीमात्र के प्रति मैत्री-भावना रखने के सिद्धान्त का प्रतिपादक है। महावीर ने कहा है-

त्तत्थिमं पढ़मं ठाणं, महावीर देसियं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो।

सभी जीवों के प्रति संयम और अनुशासन की तथा पारस्परिक संबंध में समता की भावना रखना ही निपुण तेजस्वी अहिंसा है। यह परम सुख और चिदानंद देने में समर्थ है। यद्यपि इस नैतिक सिद्धान्त - मा हिस्यात् सर्वभूतानि। (किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए।) को ब्राह्मण और बौद्ध परम्पराओं में भी स्वीकार किया है परन्तु जैन धर्म में इसका सार्वजनिक प्रयोग निहित है। वस्तुतः जैन धर्म से संबंधित प्रत्येक निगम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसी सिद्धान्त पर आधारित है।[8]

अहिंसा विश्व का शाश्वत सिद्धान्त है। यह हमेशा जीव की हिंसा का विरोध करता रहा है, चाहे वह एक मानव की हो, किसी वर्ग की या राष्ट्र की हो अथवा अन्य किसी की। जैन दृष्टिकोण से भी अहिंसा पर प्रकाश डालने के लिए आवश्यक सा मालूम होता है कि पहले जैन दृष्टि से हिंसा को समझा जाये। तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वाति ने हिंसा को परिभाषित करते हुए कहा है-

"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा"

अर्थात् प्रमादवश जो प्राणघात होता है वही हिंसा है। जीव जब प्राण धारण करता है तब प्राणी कहलाता है।

जैन धर्म के अनुसार हिंसा के दो रूप होते हैं- भाव हिंसा व द्रव्य हिंसा। मन में कषायों का जागृत होना भाव हिंसा है और मन के भाव को वचन और क्रिया का रूप देना द्रव्य हिंसा कहलाती है। मन, वचन और काय के दुरूपयोग से जो प्राण हनन होता है वही हिंसा है।

सूत्रकृतांग के प्रथम खण्ड में हिंसा का निषेध करते हुए "तिविहेण" शब्द का प्रयोग हुआ है।[9] तिविहेण 'त्रिविधेन यानी तीन विधियों से हिंसा नहीं करनी चाहिए। सामान्यतया मन, वचन और काय माना है। उपासकदशांग में मनसा, वचसा, कायसा का स्पष्ट ही प्रयोग हुआ है।[10] कुछ जैन विचारकों ने हिंसा को दूसरी तरह से भी विभाजित किया है तथा चार रूप दिखाये हैं- 1. संकल्पी, 2. आरंभी, 3. उद्योगी, 4. विरोधी।[11]

हिंसा की उत्पत्ति कषायों के कारण होती है। ये कषाय चार होते हैं- क्रोध, मान, माया और लाभ। इन्हीं कषायों के कारण समारंभ तथा आंरभ हिंसा होती है। हिंसा करने का जो विचार मन में आता है, उसे संरभ कहते हैं, हिसा करने के लिए जो उपक्रम होते हैं उन्हें समारंभ कहते और प्राणघात तक की क्रियाओं को आरम्भ कहा जाता है। हिंसा के बारह भेद होते हैं आचारांग सूत्र के 'शस्त्रपरिज्ञा' अध्ययन में षट्कायों की हिंसा का वर्णन मिलता है। पृथ्वीकाय, अप्काय (जल), अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय। आचारांग के अलावा सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, प्रवचनसार, मूलाचार आदि में षटकायों की हिंसा की चर्चाएँ मिलती हैं।

हिंसा के पोषक तत्त्व के रूप में जैन धर्म में हिंसा, असत्य, स्तेय, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह ये पांच आश्रवद्वार माने गये हैं। जैन धर्म में इन सबको विपरीत करने में अहिंसा के भाव पैदा होते हैं। जितने भी हिंसा के कारण रहे उन सभी को न करने से भी अहिंसा पैदा होती है। किसी भी जीवन को तीन योग और तीन करण से हिंसा न करना ही अहिंसा है। यह जैन दृष्टि से अहिंसा की वास्तविक परिभाषा है। नव प्रकारों में किसी भी प्रकार का घात न करना ही अहिंसा है। यही जैन दृष्टि से अहिंसा का वास्तविक सिद्धान्त है।

संदर्भ सूची -

1. गांधी साहित्य, 7, पृ. 225
2. आत्मकथा, अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय, भाग- 2, पृ. 100

Scanned by CamScanner

3. गांधीजी, अहिंसा, द्वितीय भाग, खण्ड 10, आमुख
4. गांधीजी, अहिंसा, प्रथम भाग, खण्ड 10, पृ. 32, आमुख और जैनी अहिंसा।
5. गांधीजी, अहिंसा, प्रथम भाग, खण्ड 10, पृ. 101
6. गांधीजी, अहिंसा प्रथम भाग, खण्ड 10, पृ. 101
7. गांधीजी, अहिंसा, द्वितीय भाग, पृ. 64
8. डॉ. वशिष्ट नारायण सिन्हा, जैन धर्म में अहिंसा, द्वितीय संस्करण, पृ. 5
9. सूत्रकृतांग, प्रथम खण्ड, तृतीय अध्ययन, उद्देशक 6, गाथा 12, 16
10. उपासकदसांग, द्वितीय खण्ड, प्रथम अध्याय, गाथा 13
11. अहिंसा दर्शन, उपाध्याय अमरमुनि, सं.प. शोभाचन्द्र भारिल्ल, पृ. 101

सहायक आचार्य
अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं - 341 306, (राज.)

◆ ◆ ◆

Scanned by CamScanner